

Q.1.) 'लिंग आधारित भेद-भाव' या 'लिंग आधारित विभेद' से आप क्या समझते हैं? विस्तार से चर्चा करें।

Ans - लैंगिक विषमता से हमारा अर्थ उन्नत स्थिति से है, जब स्त्री और पुरुष अर्थात् लिंग के आधार पर भेद-भाव किया जाता है। लैंगिक विषमता का अर्थ शब्द का उपयोग लैंगिक तथा सामाजिक दोनों अर्थों में किया जाता है। सामाजिक दृष्टिकोण के साथ-साथ लैंगिक विषमता का आर्थिक एवं राजनीतिक दृष्टिकोण से अध्ययन करना भी समान रूप से महत्वपूर्ण है।

समाज का आधार मानव होता है। भारतीय समाज के मानवीय समुदाय में स्त्री और पुरुष के दो आधारभूत तत्व होते हैं, लेकिन इन दोनों की संख्या अनुपात में अंतर देखा जा सकता है। भारत में इन दोनों लिंगों में मानवीय समाज में अनेक विषमता पायी जाती है। कुछ प्राकृतिक हैं, कुछ समाज द्वारा उत्पन्न हैं। इन्हीं को लैंगिक विषमता के नाम से जाना जाता है। स्त्री और पुरुष दोनों के ही समान दृष्टिकोण से समाज की उत्पत्ति हुई है परन्तु पुरुष ने चूरे-चूरे अपना आधिपत्य स्थापित कर स्त्री को अपने अधीन रखा और यही से लैंगिक विषमता की उत्पत्ति हुई है। विभिन्न कालों में नारी को अलग-अलग स्वरूपों में देखा गया। नारी कभी अर्धांगिनी बनी, कभी सहधर्मिणी, कभी सहयोगिनी तो कभी शैविका का पद उसे प्रदान किया गया। कभी वही नारी दासी एवं भौंसा भी बनी। विभिन्न कालों में उसकी स्थिति को अलग-अलग रूप से अँका गया। उसी के अनुसार उसके दायित्व भी निर्धारित किये गये। वैज्ञानिक संवेक्षणों के आधार पर स्पष्ट है कि समाज के विकास के लिए नारी का योगदान महत्वपूर्ण है।

यदि हम देखें तो स्पष्ट है कि लैंगिक विषमता वह स्थिति है जिसमें पुरुषों एवं महिलाओं में निम्नलिखित आधारों पर अंतर किया जाता है। -

- 1) स्त्री-पुरुषों को सामाजिक, व्यक्तिगत एवं आर्थिक जीवन में प्राप्त स्वतंत्रता।
- 2) पुरुषों का स्त्रियों के प्रति मनोभाव।
- 3) पारिवारिक प्रकरणों में स्त्री और पुरुषों की भूमिका।
- 4) राजनीतिक जीवन में स्त्रियों के अधिकार।
- 5) स्त्री-पुरुष की सामाजिक सहभागिता के अवसर।

लगभग सभी समाजों में संस्थागत नियम और सामाजिक दृष्टि स्त्रियों की तुलना में पुरुषों को अधिक महत्व देने आये हैं। इसी के फलस्वरूप समाज में लैंगिक विषमता की समस्या विकसित हुई है।

लैंगिक विषमता के कारण :- लैंगिक विषमता की समस्या को समझने के लिए

इसके कारणों का अवलोकन करें तो निम्न कारण स्पष्ट दिखाई देते हैं :-

① सामाजिक समस्या - लैंगिक विषमता हमारे देश में एक सामाजिक समस्या है, एक आदर्श महिला तथा पुरुष की पहचान के प्रतिमान भिन्न हैं। पुत्री को जन्म से ही ~~द्वेष~~ हेय दृष्टि से देखना। दहेज प्रथा, अशिक्षा आदि के कारण लैंगिक विषमता बनी हुई है।

② सांस्कृतिक समस्या - पुरुष प्रधान समाज में नारी के सांस्कृतिक स्वरूप की पूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करने तथा पुरुष की गरिमा मंडित के कारण ही सामंजस्य में बाधा उत्पन्न होती है तथा महिलाओं की स्वतंत्रता प्रदान करने में बाधा उत्पन्न होती है।

③ मनोवैज्ञानिक समस्या - महिलायें मनोवैज्ञानिक रूप से भी इस विषमता की शिकार हैं। पूर्वजनों से चरित होने के कारण प्रायः स्त्री ही स्त्री के विकास में बाधा उत्पन्न कर देती हैं। प्रौढ शिक्षा द्वारा इस दिशा में प्रयास किया जा रहा है।

④ आर्थिक समस्या - लैंगिक विषमता के मूल में आर्थिक पक्ष भी है। कन्या को आर्थिक लोभ तथा पुत्र को आर्थिक वरदान माना जाता है। शिक्षा द्वारा इस मानसिकता को भी दूर करना आवश्यक है।

लैंगिक विषमता को नियंत्रित करने के उपाय :- सामाजिक संरचना के ढंग में लैंगिक असमानता को दूर करना अनिवार्य है क्योंकि जो समाज इस दिशा में पिछड़ा जाता है वह किसी भी प्रकार विकास नहीं कर पाता। लैंगिक विषमता को दूर करने के लिए भारत सरकार द्वारा विभिन्न प्रयास किये जा रहे हैं इनमें से प्राथमिक शिक्षा के प्रयास निम्नलिखित हैं :-

- ① सभी बालिकाओं के लिए निःशुल्क पाठ्यपुस्तकें उपलब्ध कराना।
- ② विद्यालयों में बालिकाओं के लिए सुविधाएँ बनवाना।
- ③ जहाँ किये जाने वाले 50% शिक्षक महिलायें होंगी।
- ④ ग्राम शिक्षा समितियों / अभिभावक शिक्षक संघों में महिलाओं का प्रतिनिधित्व।
- ⑤ प्रारंभिक शिक्षा पद्धति में स्त्री-पुरुष संवेदनशील आयोजन तथा स्कूलों का प्रबंधन।
- ⑥ शिक्षा गारंटी तथा वैकल्पिक ~~जबकभी~~ नवचारी योजना के माध्यम से भिन्न-भिन्न आयु वर्गों की बालिकाओं के अनुरूप लचीली शिक्षा पद्धतियाँ प्रदान करना।
- ⑦ बालिकाओं की शिक्षा की आवश्यकता के लिए पंचायती राज तथा समुदाय आधारित संगठनों को संवेदनशील बनाया जायेगा।

Q(2.) महिला सशक्तीकरण से आप क्या समझते हैं ? चर्चा करें ।

Ans:- महिला सशक्तीकरण से आशय यही है कि महिलाओं को अधिकार सम्पन्न बनाया जाये । उनके मानवाधिकार प्रदान कर, उसके अनुकूल सामाजिक परिस्थितियों उत्पन्न की जायें ताकि महिला वर्ग अपना समुचित विकास कर सके ।

महिला सशक्तीकरण का तात्पर्य है कि 'महिला अपने अस्तित्व की स्थापना करके अपने व्यक्तित्व का विकास कर सके । अर्थात् महिला की 'पहचान', होना, पहली शर्त है । वर्तमान सामाजिक परिवेश में अधिकांश महिलाओं की अपनी पहचान ही नहीं है । वह तो मात्र किसी की पत्नी है या किसी की माँ है । वस यही उनकी पहचान है । उसके नाम से उन्हें बहुत कम लोग जानते हैं । ऐसी महिलाओं का समस्त जीवन, परिवार एवं समाज की सेवा करते-करते ही बेनामी की चुंध में गुप्त हो जाता है । इन्होंने अपने व्यक्तित्व के विकास की ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया ।

1930 ई० में महात्मा गांधी जी ने कहा था कि - "महिलाओं को कमजोर कहना उनका अपमान है । यह पुरुषों का महिलाओं के प्रति अत्याच है ।"

अर्थात् सर्वप्रथम महिला को मानव होने के नाते समस्त मानवाधिकार प्राप्त हों । ताकि वह अस्तित्व को स्थापित कर सके । इसके पश्चात् उसके सम्पूर्ण विकास शारीरिक, मानसिक, आर्थिक, बौद्धिक, सामाजिक एवं राजनीतिक क्षेत्र में परिपूर्णता हासिल करने के लिए उत्सर्ग प्रदान किए जाए । इससे महिला आत्म-निर्भर होकर आत्मविश्वास एवं सम्मान के साथ जीवन-थापन करने के योग्य बन सकेगी । वह अपने व्यक्तित्व का निर्माण एवं विकास कर सकेगी और उक्त चरणों से गुजरती हुई, महिला सशक्तीकरण नामक नाव में सवार हो सकेगी ।

महिला सशक्तीकरण एवं इसके लिए किये गए प्रावधान/उपाय

(Women Empowerment and its Provisions)

संविधान के भाग 4 में उल्लेखित नीति निर्देशक तत्वों में भी महिलाओं के हितों को संरक्षित करने का प्रयास किया गया है । अनुच्छेद 39 राज्य को अपनी नीतियों इस प्रकार बनाने की निर्देशित करता है कि पुरुष और स्त्री दोनों को समान रूप से आजीविका का साधन उपलब्ध हो । अनुच्छेद 40 में स्त्रियों के लिए कार्य की मानवीयत दृष्टियों प्रवृत्ति लक्ष्यता हेतु उपबंध करने का निर्देश ।

केन्द्र सरकार ने समय-समय पर अनेक प्रकार के कानूनों का प्रावधान किया है -

1961 बाल - विवाह निषेध अधिनियम, 1986 स्त्री निषेध अधिनियम

1976 वैश्यावृत्ति निवारण अधिनियम 1987 प्रसव पूर्व निदान तकनीकी अधिनियम  
अनेकों अधिनियमों का महिला अधिकार संरक्षण सशक्तीकरण हेतु प्रावधान किया

गया है। कारखाना अधिनियम 1948 में संशोधन कर पुरुष और महिला कामगारों के लिए अलग-अलग शौचालयों की व्यवस्था करने का निर्देश दिया गया। महिलाओं की आर्थिक गतिविधियों में सुगमता लाने के लिए वर्ष 2005 में हिन्दू उत्तराधिकार अधिनियम में संशोधन कर कई चाराओं का लोप कर नई चाराओं को स्थापित किया गया इसके द्वारा पिता की संपत्ति में पुत्रियों का वही अधिकार है जो पुत्रों का है।

घरेलु हिंसा से महिलाओं के संरक्षण के लिए 2005 में संसद द्वारा अधिनियम पारित किया गया। 26 अक्टूबर 2006 से लागू अधिनियम का मुख्य उद्देश्य पति या साथ रहने वाले किसी भी पुरुष या उसके संबंधियों की हिंसा या प्रताड़ना से पत्नी या साथ रह रही किसी भी महिला को सुरक्षा प्रदान करता है। ऐसे महिलाओं को भी इस अधिनियम के तहत सुरक्षा प्रदान की गई है, जो बिना विवाह के ही किसी पुरुष के साथ रह रही हैं। इस अधिनियम में ताना मारने से लेकर, शारीरिक, जबरन लज्जा या आर्थिक शोषण करना, धमकी देना भी अपराध है।

महिला सशक्तिकरण की दिशा में एक महत्वपूर्ण प्रयास करते हुए भारत सरकार द्वारा 31 जनवरी 1992 को राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन किया गया जो महिलाओं की संवैधानिक व कानूनी सुरक्षा के अधिकारों को रोक दंग से लागू करता है। राष्ट्रीय महिला आयोग के गठन के बाद 1993 में राष्ट्रीय महिला कोष का गठन किया गया। इस कोष से स्वरोजगार हेतु प्रयासरत महिलाओं एवं महिला समूहों को प्रेरण दिया जाता है।

महिला सशक्तिकरण के लिए निम्न उपायों पर जोर देना होगा :-

- ① रेडियो, टी.वी. तथा फिल्मों को इस दिशा में जोर देना होगा।
- ② औपचारिक शिक्षा। प्रौढ शिक्षा की शिक्षिकाओं और अनुशिक्षिकाओं को विशेष प्रकार से प्रशिक्षण देना होगा जिससे कि वे महिला समानता की दिशा में सक्रिय रूप से योगदान दे सकें।
- ③ विश्व विद्यालयों में महिला अध्ययन केन्द्र खोले जायें।
- ④ गांवों में रोजगार संबंधित कुशलताओं को विकसित किया जाए।
- ⑤ व्यवसायिक केन्द्रों-संस्थाओं में महिला विकास के कार्यक्रम चलाये जाए।

अतः यह कहा जा सकता है कि भारतीय महिला को पूर्ण रूप से प्रगती व सशक्त बनाने के लिए इन कदमों पर ध्यान देना अत्यंत आवश्यक है।

Q(3.) समता एवं समानता में अंतर बतायें। भारतीय संविधान में समानता के लिए क्या नियम हैं ?

अथवा ।

भौतिक अवसरों की समानता से संबंधित किंगडम चारामों की व्याख्या करें।

किंगडम: - समानता - प्रत्येक व्यक्ति को उसकी योग्यता, क्षमता, पात्रता के अनुसार काम करने के अवसर प्रदान करना है। समानता का अर्थ केवल सामाजिक, आर्थिक शक्तिशाली में समानता से ही नहीं है अपितु मनुष्य के प्रत्येक स्तर के समानता से है।

आज का युग समानता का युग है, समानता एक महत्वपूर्ण मूल्य है, यह स्वतंत्रता पुरक मूल्य है। भारतीय संविधान ने भी वर्ण, जाति, वर्ग, धर्म, पंथ, सम्प्रदाय, भाषा, लिंग, जाति पर आधारित किसी भी प्रकार के भेदभाव को संविधान में मान्यता नहीं दी है। समानता का अधिकार एक महत्वपूर्ण मौलिक अधिकार है, जिसका उल्लेख अनुच्छेद 14 से 18 तक में किया गया है।

(क) कानून के समक्ष समानता - संविधान के अनुच्छेद 14 के अनुसार "भारत के राज्य क्षेत्र में राज्य किसी भी व्यक्ति को कानून के समक्ष समानता और कानून के समान संरक्षण से वंचित नहीं करेगा। कानून के समक्ष समानता का अर्थ यह है कि कानून के सामने सभी बराबर हैं और किसी को कोई विशेषाधिकार नहीं है।

(ख) भेदभाव पर प्रतिबंध - अनुच्छेद 15 में कहा गया है कि "राज्य धर्म, वर्ण, जाति, लिंग तथा जन्म-स्थान के आधार पर किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं करेगा।" इस अनुच्छेद में यह भी स्पष्ट किया गया है कि किसी भी व्यक्ति को ऊपर लिखित आधारों पर किसी सार्वजनिक स्थान, कुकान, होटल, स्नानघर, तथा तालाब पर जाने से नहीं रोका जा सकता।

(ग) सार्वजनिक सेवाओं में अवसरों की समानता - अनुच्छेद 16 द्वारा सभी भारतीयों के लिए नौकरी प्राप्त करने अथवा सरकारी सेवाओं में प्रवेश होने के लिए, 'अवसरों की समानता' की व्यवस्था की गई है।

(घ) दुष्क्रियता की समाप्ति - अनुच्छेद 17 के द्वारा दुष्क्रियता को समाप्त कर दिया गया है। सन् 1955 में संसद द्वारा 'अस्पृश्यता अपराध अधिनियम' पारित किया जो समस्त भारत पर लागू होता है।

(ङ) उपाधियों की समाप्ति - अनुच्छेद 18 के अधीन भारत में जिसका तथा सैनिक विद्यमानों के अतिरिक्त अन्य सभी प्रकार की उपाधियों की समाप्ति कर दी गई है।

समता : - समता का अभिप्राय सामाजिक-थाल अथवा औचित्य से है। समता व्यक्ति परक तथा नैतिक निर्णय है। समता एवं समानता में यदि गहन रूप से विचार किया जाए तो कुछ अंतर स्पष्ट नजर आता है।

समता का आधार सामाजिक-थाल है जबकि समानता के तहत समाज में अधिकार

(सीखना) या अवसर की योग्यतानुसार बिना किसी जोड़भाज के किये जा सकने की संभावना से है। इस प्रकार समता को साधन एवं समानता को साध्य माना जा सकता है। समता से अभिप्राय है पक्षपात रहित होना इस शब्द को समानता का पूरा समझा जाता है।

संविधान द्वारा कुछ प्रावधान किये गये हैं जो पिछड़े वर्ग, अल्पसंख्यकों, स्त्रियों, बच्चों के लिए विशेष सुविधा का प्रबंध किया गया है, इनके कल्याण के लिए ऐसा करना आवश्यक समझा गया इसी को समता कहा जा सकता है।

शैक्षिक अवसरों की समानता :-

शैक्षिक अवसरों की समानता का अर्थ सभी के लिए समान शिक्षा नहीं है, बल्कि प्रत्येक बालक की शारीरिक, मानसिक, सांकेतिक, शैक्षिक परिस्थितियों के अनुरूप शिक्षा प्रदान करना है। इसका तात्पर्य राज्य द्वारा व्यक्तियों की शिक्षा के संदर्भ में जाति, रूप, रंग, प्रान्तबिता एवं भाषा, धर्म, आदि के मध्य भेदभाव न करने से भी है।

शैक्षिक समानता के अवसर बढ़ाने के उपाय :- शैक्षिक अवसरों की समानता में व्याप्त विषमता को दूर करने हेतु शिक्षा आयोग ने निम्नलिखित उपाय बताये हैं :-

- ① प्राथमिक शिक्षा सभी विद्यालयों में निःशुल्क बनाने का प्रयास किया जाय।
- ② माध्यमिक शिक्षा को अग्रगण्य निःशुल्क बनाने का प्रयास किया जाय। इसके लिए एक अग्रसार्वभूमिक कार्यक्रम बनाया जाये।
- ④ आगामी 10 वर्षों में उच्च माध्यमिक तथा विश्वविद्यालय शिक्षा में फीसों के संदर्भ में प्रयास किया जाना चाहिए कि सभी जलरतमंड और शोच्य छात्रों को निःशुल्क शिक्षा दी जाये।
- ⑤ प्राथमिक स्तर पर पाठ्यपुस्तकें और लेखन सामग्री मुफ्त दी जाये।
- ⑥ प्रतिभाशाली छात्रों को पुस्तकें खरीदने के लिए अनुदान दिये जाये।
- ⑦ शिक्षा के विभिन्न स्तर छात्रवृत्तियों के कार्यक्रम लागू किया जाय।
- ⑧ स्त्रियों की शिक्षा को अगले कुछ वर्षों के लिए शिक्षा का एक बड़ा कार्यक्रम माना जाये और उनमें आने वाली कठिनाईयों का सामना करने तथा पुस्तकों एवं नारियों की शिक्षा के मौजूदा अंतर को अग्रगण्य कम करने के लिए राहस्य पूर्ण प्रयास किये जाये।
- ⑨ अनुसूचित जातियों की शिक्षा का मौजूदा कार्यक्रम जारी रखा चाहिए और इसका विकास भी किया जाना चाहिए।

Q(4.) सामाजिक आन्दोलन किसे कहते हैं। 19वीं शताब्दी के सामाजिक और धार्मिक आन्दोलन की चर्चा करें।

Ans: - सामाजिक आन्दोलन - सामाजिक आन्दोलन लोगों के वृहत समूहों द्वारा की गई वह सामूहिक प्रक्रिया है जो कि समाज के कुछ मूल्यों, प्रतिमानों तथा सामाजिक संबंधों को बदलने के उद्देश्य से की जाती है, परन्तु इस क्रिया में अनायासता और निरन्तरता दोनों ही होती हैं।

19वीं शताब्दी में महिलाओं से संबंधित बहुत सी सामाजिक बुराइयों को खत्म किया गया। इनमें से प्रमुख थी सती प्रथा (विधवा का अपने पति के साथ ज्वाला में जीवित जल जाना), बाल-विवाह, विधवा पुनर्विवाह पर निषेध, लड्डू विवाह इत्यादि। श्री कृष्ण कद-विवाह का विषय खत्म हुआ। 19वीं शताब्दी में ब्रिटिश काल के दौरान अंग्रेजी शिक्षा के प्रसार और भारतीयों के बीच पश्चिमी स्वतंत्रता विचारधारा के प्रभाव और ईसाई मिशनरी क्रिया कलापों के फलस्वरूप सामाजिक परिवर्तनों और धार्मिक सुधारों के लिए बहुत से आन्दोलन हुए।

उद्देश्य - इन आन्दोलनों के प्रमुख उद्देश्य थे।

- (i) जाति सुधार
- (ii) महिलाओं की मान प्रतिष्ठा में सुधार
- (iii) महिला शिक्षा प्रसार
- (iv) विभिन्न समुदायों में फैली हुई सामाजिक बुराइयों पर प्रहार करना, जिनकी जड़ें सामाजिक और वैधार्मिक तथा धार्मिक परम्पराओं से जुड़ी हुई थी।

19वीं शताब्दी के प्रारंभिक चरण में सामाजिक सुधार आंदोलनों में प्रमुख रूप से पुरुष सुधारकों का समर्थन रहा। इनमें सबसे प्रमुख राजा राममोहन राय का नाम आता है। इसके अन्तर्गत जिन समस्याओं पर विचार विमर्श किया गया उनमें सती प्रथा, विधवाओं के साथ दुर्व्यवहार, विधवा का पुनर्विवाह, लड्डू विवाह, बाल विवाह और संपत्ति पर महिलाओं का अधिकार न होना और महिला शिक्षा की आवश्यकता प्रमुख थी।

1) ब्रह्म समाज - ब्रह्म समाज की स्थापना 1825 ई० में राजा राम मोहन राय ने की थी। इसका उद्देश्य महिलाओं के विरुद्ध प्रतिबंधों और पूर्वाग्रहों को उखाड़ फेंकना था जिन्होंने जड़ें धर्म में थी। इनमें शामिल थे बाल-विवाह, लड्डू-विवाह, उत्तराधिकार में प्राप्त संपत्ति में सीमित अधिकार और महिलाओं को उनसे अलग रखना। केशव चन्द्र गेन ने घर पर शिक्षित महिलाओं की आवश्यकता पर जोर दिया और इस उद्देश्य के लिए सरकारी समर्थन प्राप्त किया। ब्रह्म समाज की देख-रेख में अंतरजातीय विवाह भी कराये गए। इस प्रकार के परिवर्तनों और बदलावों को हिन्दू समाज की जमी जमाई चारणाओं के विरोध का

सामना करना पड़ा और इसके फलस्वरूप 1872 में सिविल मैरिज एक्ट पास किया गया। इस अधिनियम में अंतरजातीय विवाह और तलाक के लिए इजाजत दी। इसके अनुसार विवाह की न्यूनतम आयु 14 वर्ष लड़की के लिए और 18 वर्ष लड़के के लिए निर्दिष्ट की गई। ब्रह्म समाज का प्रभाव केवल बंगाल और उत्तर भारत तक ही सीमित रहा।

(१) प्रार्थना समाज :- इसकी स्थापना 1867 में की गई थी और इसके अध्यक्ष भी ब्रह्म समाज की तरह था, उसका प्रभाव पश्चिमी भारत तक ही सीमित रहा। रामजी रामदास और जारजी मण्डारकर इसके अग्रणी थे। 1869 में लम्बे विडोज रिफार्म एसोसियेशन की स्थापना की गई और इसने 1869 में पहला विधवा पुनर्विवाह कराया। प्रार्थना समाज के ही नेता आरजी मण्डारकर और रामजी चन्द्रावकर बाद में प्रथम महिला विश्वविद्यालय के वाइस चांसलर बने। इस विश्वविद्यालय की स्थापना 1916 में लम्बे में मद्रास में की थी। इसका नाम बाद में बदलकर एम. एम. डी. टी. महिला विश्वविद्यालय कर दिया गया। इन दोनों आन्दोलन का ध्यान महिला शिक्षा पर केंद्रित था जिससे महिलाओं और पुरुषों के बीच बढ़ते हुए अंतर को कम किया जा सके और महिलाओं को आधुनिक शिक्षा का लाभ मिल सके।

(२) आर्य समाज :- आर्य समाज की स्थापना स्वामी दयानंद सरस्वती ने 1857 में की थी। यह एक धार्मिक आन्दोलन था। हिन्दू धार्मिक परम्परा, रिवाज, पुर्ति-पूजा और जाति भेद वाले समाज को अस्वीकार करते हुए इस आन्दोलन का नारा था - वेदों की ओर लौटो। इस आन्दोलन ने प्राचीन भारत में महिला की स्थिति का शानदार चित्रण किया। आर्य समाज ने जिन सुधारों का समर्थन किया उसमें जाति प्रथा, पुरुषों और महिलाओं के लिए आवश्यक शिक्षा कानून के हारा वाला विवाह का निर्वहण, विधवा पुनर्विवाह प्रमुख थे। साम्राज्य यह आन्दोलन तलाक और विधवा पुनर्विवाह के पूरी तरह विरुद्ध था और इसने लड़के तथा लड़कियों के लिए अलग-अलग विद्यालय खोलने के लिए जोर डाला। अनेक आर्य कन्या पाठशालायें खोली गईं जो बाद में चलकर महाविद्यालय बन गईं और इन्होंने महिला शिक्षा में अपना योगदान दिया। यद्यपि यह प्रमुख शहरी आन्दोलन था फिर भी यह अर्ध शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों तक भी फैला और इन क्षेत्रों में अपना प्रभाव डाला।

इस प्रकार 19 वीं शताब्दी में स्त्रियों की सुधार के लिए अनेक आन्दोलन चले। ब्रह्म समाज तथा आर्य समाज ने अपनी तरफ से पूरा प्रयास किया जिससे समाज में स्त्रियों की परस्थिति को परिवर्तित किया जा सके।



Q5.) ~~लिखित~~ परिवार, विद्यालय एवं विभिन्न औपचारिक एवं अौपचारिक संस्थानों के द्वारा लिंग पहचान एवं समाजिकरण प्रक्रिया किस प्रकार की है ?

ANS: - लिंग पहचान (Gender Identity) - जब बच्चा अपने बारे में नर या मादा होने का वास्तविक ज्ञान अर्जित कर लेता है तो यह लिंग पहचान की शुरुआत करता है। लगभग 2 वर्ष की आयु तक के बच्चों में लिंग पहचान स्थापित हो जाती है। वह अपने को लड़का या लड़की पहचानने लगता है। इसके बाद यह पहचान बढती जाती है। लिंग एक जटिल प्रकार का पद होता है इसके अन्तर्गत लिंग त्वरि बुद्धियों तथा लिंग भूमिकाओं दोनों का शामिल किया जा सकता है। लिंग-भूमिकाओं की पहचान इन पर प्रभाव डालने वाले कारक करवाते हैं। लिंग आधारित भूमिकाओं में निम्नलिखित कारक जोड़भाव उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी होते हैं।

① पुरुषों पर निर्भरता - परिवारों में विशेषकर भारत में महिलाओं की विभिन्न भूमिकाओं को निभानी पड़ती है, जैसे - पत्नी, बहन, माँ, दादी की। यही महिलाओं की नियति होती है।

② शिक्षा का अभाव : - शिक्षा का अभाव भी लिंग भूमिकाओं को प्रभावित कर रहा है। शिक्षा की सामाजिक परिवर्तनों का मुख्य साधन माना जाता है।

③ रीति-रिवाज (Customs) - पहले लोग अपने परिवार अर्थात् बाल-बच्चों के साथ एक समुदाय के रूप में रहते थे। इस प्रकार की क्रिया कलापों में महिलायें सामाजिक जिम्मेदारियों में जकड़ी रहती थी।

④ बाहरी संसार से सम्पर्क का अभाव (Lack of Exposure) - महिलाओं को घर से बाहर निकलने के अवसरों के अभाव का सामना करना पड़ता है। बाहरी संसार में वे अलग-थलग पड़ जाती हैं। अतः इनमें ऐसी अभिवृत्तियों और कौशलों का विकास होना चाहिए जो उन्हें बाहरी संसार का सामना करने में सक्षम बन सकें।

सद्व्यक्तियाँ : - किसी समूह के सभी व्यक्तियों को एक चयनात्मक या अधुनीयता के आधार पर जो सर्वथा अन्तर्गत रहित होकर व अलग होती है एक ही वर्ग या श्रेणी में रखने की मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया का नाम सद्व्यक्ति है। जैसे - 'हिप्पी' गन्धे होते हैं, अंग्रेज बुद्धिमान होते हैं आदि श्रेणियों सद्व्यक्तियाँ कहलाती हैं।

लिंग भूमिका तथा त्वरि बुद्धियाँ (Gender Role and Stereotypes) - लिंग भूमिका त्वरि बुद्धियों के अनेक तत्व हैं। लच्चे इन सभी तत्वों को एक साथ नहीं सीख पाते। लिंग त्वरि बुद्धियाँ वे धारणाएँ हैं जो हम पुरुषों एवं महिलाओं के बारे में अपने मन में रखते हैं। प्रत्येक समाज पुरुषों / महिलाओं की भूमिकाओं को परिभाषित करता है और इन भूमिकाओं में उन्हें समाजिकृत करता है ताकि प्रत्येक व्यक्ति चाहै वह स्त्री ही या पुरुष इन मानकों की 'सामान्य' व 'प्राकृतिक' मानकर इन्हें स्वीकार कर लें।

जैसी- लड़कियों को सहनशील, बहाली, नम्र, आज्ञाकारी एवं सौम्य होना चाहिए। जबकि लड़कों को मजबूत, परिवार का संरक्षक होना चाहिए, चुदर तथा आक्रामक होना चाहिए।

लिंग भूमिका स्त्रीयुक्तियों का लड़के तथा लड़कियों पर गहरा प्रभाव पड़ता है, जिसका वर्णन इस प्रकार है :-

① बहुत से समाज महिलाओं या लड़कियों की तुलना में पुरुषों एवं लड़कों को ज्यादा महत्व देते हैं।

② हमारे देश में लड़कियों की दौरी आयु में शादी हो जाने से वे जल्दी में लग जाती हैं।

③ लड़कियों के स्वास्थ्य का लड़कों की तुलना में कम ध्यान दिया जाता है।

④ लड़कियों के विरूपदाई करना अप्रिय नहीं माना जाता है। जबकि लड़कों की शिक्षा को प्राथमिकता दी जाती है।

⑤ लड़कियों से भविष्य में फनी या माता की भूमिका निभाने के लिए पहले से ही चतुर्लु काम काज में हाथ बटाने की उम्मीद की जाती है।

⑥ लड़कियों या महिलाओं को जमीन / जखदाई विरासत में नहीं मिलती या वे देसी जखदाई पर स्वभाविक हक नहीं जमा करती और नहीं अपनी मर्जी से तलाक ले सकती हैं या कुछ संस्कृतियों में तलाक के बाद बच्चों की सुरक्षा का अधिकार उन्हें अपनी मर्जी से नहीं मिलता।

⑦ निर्णायक मण्डलों में महिलाओं को कम महत्व दिया जाता है।

⑧ पुरुषों एवं लड़कों के साथ भी कई तरह का जोड़भाव किया जाता है। महिलाओं की भूमिकाओं में बहुत बदलाव आया है।

जोकि पाश्चात्य शिक्षा, नगरीकरण और औद्योगिकीकरण के प्रभाव के परिणामस्वरूप आया है। इस प्रभाव के कारण प्राचीनता और आधुनिकता में बूँद की स्थिति पैदा हुई। निःसंदेह आधुनिक अभिवृत्तियों का विकास हुआ है। महिला स्वतंत्रता आंदोलन से भी यौन-भूमिकाओं में परिवर्तन हुआ है।

प्रत्येक क्षेत्र में महिलाओं की संभाविता बटाने के प्रयत्न किए गए, कई कानूनी प्रावधान भी किए गए, जैसी - पंचायती राज, महिलाओं के कल्याण के लिए निर्मित संस्थान आदि। महिला प्रशासिकीकरण के लिए बनी योजनाओं के कारण भी यौन-भूमिकाएँ प्रभावित हुईं। सरकारी संस्थानों के साथ-साथ गैर सरकारी संस्थाओं में भी ऐसे प्रयास किए गये हैं।

Q(6) सामाजिक संरचना के विभिन्न सिद्धांतों की चर्चा करें। OR  
लिंग के आधार पर सामाजिक संरचना से आप क्या समझते हैं?

Ans: - सामाजिक संरचना की अवधारणा को समझने से पूर्व हमें संरचना के अर्थ को समझना होगा। संरचना एक जटिल समग्र है, जिसमें विभिन्न इकाइयाँ एक-दूसरे से अर्थात्पूर्ण ढंग से जुड़ी होती हैं। इन इकाइयों में परस्पर प्रक्रियात्मक रकता और निर्भरता होती है। सब इकाइयाँ जब एक विशेष रूप में जुड़कर जटिल समग्र बनाती हैं तो उसे संरचना कहते हैं। जैसे - चूना, लौहा, सीमेंट, बजरी, घन, मजदूर आदि से मिलकर मकान रूपी भौतिक संरचना का निर्माण होता है। जिस प्रकार भौतिक तत्वों की संरचना होती है, उसी प्रकार समाज की भी संरचना होती है। समाज की संरचना में भी अनेक छोटी-छोटी इकाइयाँ होती हैं। जैसे परिवार, संयुक्त परिवार, वंश, गोत्र, कलब, लखह, संस्थान, प्रत्येक परिस्थिति आदि। समाज की संरचना को सामाजिक संरचना कहा जाता है। यह संरचना अर्थात्क होती है।

गैल विकास के सिद्धांत (Theories Related to Gender Development)

गैल विकास से जुड़े कुछ सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है। इन सिद्धांतों के माध्यम से हमें इस बात का ज्ञान होता है कि आयु बढ़ने के साथ-साथ गैल पहचान या गैल संबंधी व्यवहार किस प्रकार होता है? इन सिद्धांतों की संक्षिप्त चर्चा निम्नलिखित है।

① गैल तत्व सिद्धांत (Gender Scheme Theory) - इस सिद्धांत के अनुसार बालक की गैल पहचान तथा उसके परिणामस्वरूप लक्ष्य में उत्पन्न होने वाले लिंग श्रेणीकरण के विकास में गैल तत्व महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस सिद्धांत के अनुसार बालक चाहे किसी भी जाति या धर्म से संबंध रखता हो, उस बालक के शरीर के विभिन्न अंगों की बनावट, शरीर का रंग या आँसुओं का रंग आदि के बारे में जानने से पहले यह जानना आवश्यक है कि बालक किस गैल से संबंध रखता है।

② ज्ञानात्मक विकास का सिद्धांत (Theory Related to Cognitive Development) इस सिद्धांत के अनुसार लक्ष्य में शारीरिक, मानसिक, क्रियात्मक, नैतिक तथा अन्य अनेक प्रकार के विकास के साथ ज्ञानात्मक विकास भी होने लगता है। शुरू-शुरू में बालक को अपने बारे में किसी प्रकार का कोई ज्ञान नहीं होता। धीरे-धीरे वह स्वयं और दूसरों में अंतर करना सीख जाता है। दो वर्ष की आयु से पहले तक बालक को अपने 'आप' के बारे में कुछ भी पता नहीं होता वह लड़का है या लड़की। इसका उसे स्पष्ट ज्ञान नहीं होता। दो वर्ष की आयु से बालक अपने 'आत्म' के बारे में यह जान लेता है कि वह कौन है। अतः इस आयु तक वे गैल पहचान तक पहुँच जाते हैं धीरे-धीरे 'गैल पहचान' की अवधारणा होती है।

से संबंधित  
 (3) सामाजिक अधिगम सिद्धांत (Theory Related to Social Learning) -

इस सिद्धांत का आधार यह मानता है कि यदि बालक के लिंग संबंधी दृष्टियों तथा लिंग भूमिकाओं के अनुसारा व्यवहार करने पर पुरस्कार या पुनर्वसन प्रदान किया जाता है तो वे इस प्रकार के व्यवहार प्रतिमान को अधिगम लेते हैं तथा अपने लिंग से संबंधित उपेक्षा के अनुसारा व्यवहार करना सीख जाते हैं। ऐसे बालक अपने ही लिंग वाले माता-पिता की आदतों, व्यवहारों, दृष्टियों तथा अभिव्यक्तियों के अनुसारा व्यवहार करना शुरू कर देते हैं। वे अपने माता-पिता जैसे बनने की कोशिश करने लगते हैं।

जैसे-दोरा लच्चा अपने पिता की तरह कपड़ा पहनना, चश्मा लगाना तथा अन्य क्रियाएँ करनी शुरू कर देते हैं। इसी प्रकार लड़कियों भी अपनी माता की तरह स्वामी बनना, साड़ी पहनना आदि क्रियाएँ करने लगती हैं। इस प्रकार आयु बढ़ने के साथ-साथ लच्चे शौन-पहचान की ओर आग्रसर होने लगते हैं।

(4) शौन भूमिका का सिद्धांत : - (Gender Role Theory) - शौन भूमिका सिद्धांत के अनुसारा लड़के तथा लड़कियों परिवार से उपयुक्त व्यवहार और इच्छा सीखते हैं तथा सम्पूर्ण रूप से जलते लड़के ही होते हैं तब तक सीखते हैं।

सामाजिक भूमिका सिद्धांत यह मानता है कि शौन अंतरों के पीछे सामाजिक संरचना का शक्ति या बल होता है। सामाजिक भूमिका सिद्धांत के अनुसारा ही शौन-विभेदीकृत व्यवहार दोनों शौनों के बीच समाज में परिष्कार के विभाजन के परिणाम स्वरूप होता है। परिष्कार-विभाजन शौन भूमिकाएँ उत्पन्न करता है जिसके परिणाम स्वरूप शौन सामाजिक व्यवहार उत्पन्न होता है। शौनों का शारीरिक विभेदीकरण शौन भूमिकाओं का कारण है। शारीरिक आकार और शरीर की शक्ति बूढ़ों को महिलाओं से उन सामाजिक क्रियाओं में श्रेष्ठ या ऊपर रखती है जिनमें शारीरिक गुणों की आवश्यकता होती है जैसे - गिद्धार करना, खुद करना।

इसरी और, महिलाओं की प्रजनन और बालक पोषण जैसे शक्ति क्षमता उनकी सामाजिक क्रियाओं में सीमित प्रभाविता की व्याख्या करती है। इस प्रकार की वंदिता व्यवस्था से शौनों में 'परिष्कारक विभाजन' को बल मिला है।

संक्षेप में, सामाजिक भूमिका सिद्धांत पुरुष और महिलाओं को भूमिकाओं में बाँटना, शौन-विभेदीकृत सामाजिक व्यवहार की प्राथमिक उत्पत्ति है।

①(7.) एक समाज के विकास में अध्यापक की भूमिका का वर्णन करें।

किं० :- अध्यापक - अध्यापक शिक्षा प्रक्रिया की चूरी है। जब शिक्षा और शिक्षण प्रक्रिया की बात चलती है तो एक ऐसा व्यक्ति हमारे सामने खड़ा होता है जो शिक्षा प्रक्रिया की दायों के लिए बुद्धिपूर्वक बनाता है और पढ़ा-पढ़ा पर दायों का मार्गदर्शन करता है। ऐसे व्यक्ति को बुद्धि अथवा अध्यापक कहा जाता है।

अध्यापक तथा समाज (Teacher and Society)

आज हर तरफ शिक्षा के महत्व को देखा जा सकता है और शिक्षा के स्थान को समझा जा सकता है। शिक्षा आज के जीवन का एक मुख्य अंग है और शिक्षित व्यक्ति की समाज में बहुत इज्जत होती है। शिक्षा प्रदान करने का कार्य औपचारिक रूप से अध्यापक का होता है। इसलिए समाज की अध्यापक से बहुत अपेक्षाएं होती हैं।

समाज में अध्यापक की भूमिका (Role of Teacher in Society)

समाज में अध्यापक को महत्वपूर्ण स्थान मिला है। अध्यापक को समाज में केंद्री भूमिका चाहिए इस विषय को दो पक्षों में समझना चाहिए। पहला, अध्यापक को समाज केंद्री भूमिका में देवना चाहिए है। दूसरा, आज वास्तव में अध्यापक समाज में क्या भूमिका निभा रहा है। इन दोनों पक्षों के विषय में विवरण इस प्रकार है :-

\* पहला पक्ष (First Aspect)

① आदर्श प्रस्तुत करना :- अध्यापक को समाज में एक आदर्श रूप प्रस्तुत करना चाहिए। ऐसा देखा गया है कि जो शिक्षक मेहनती और अच्छे होते हैं वह अक्सर दायों के बीच प्रगतिशील रहते हैं। दाय अध्यापक से प्राप्त अच्छे गुणों व सभ्य व्यवहार से समाज में अच्छा योगदान दे पायेंगे और इससे समाज का बला होगा।

② मूल्यों का विकास करना :- एक अध्यापक को दायों में सामाजिक मूल्यों का विकास करना चाहिए। अध्यापक का कार्य दाय की शिक्षण विषयों का ज्ञान देना होता है परन्तु इसके अलावा एक अध्यापक को दायों को उन मूल्यों का भी ज्ञान कराना चाहिए जो दायों की सामाजिक रूप से सफल बनाने में सहायक होंगे।

③ आत्म-विश्वास बढ़ाना - एक अध्यापक को अपने दायों का आत्मविश्वास बढ़ाना चाहिए और उन्हें आत्मविश्वासी बनने में मदद करनी चाहिए। आत्मविश्वास बढ़ने से दाय किसी भी परिस्थिति का सामना बिना डरे कर सकेंगे और समाज में उपस्थिति बुराई का सामना भी करेंगे।

④ मार्गदर्शन करना - एक अध्यापक को मार्गदर्शन को उचित दिशा प्रदान करनी चाहिए ताकि वह अपने आविष्य के विषय में स्पष्ट रहे और आगे बढ़ते जाए।

⑤ रक्षा बनाए रखना - हमारे समाज में बहुत से चर्म व जातियों मौजूद हैं। इन सब के बीच प्रेम एवं सहयोग का भाव उत्पन्न करना, शान्ति बनाए रखना व रक्षा करना एक शिक्षक का कर्तव्य होता है।

द्वितीय घटक (Second Aspect) - अध्यापक से समाज को बहुत सी अपेक्षाएँ होती हैं यदि वह उन्हें पूरा न करे तो इससे समाज को हानि पहुँचती है। एक अध्यापक को आज समाज में जो योगदान देना चाहिए उसमें वह पूर्ण रूप से सफल नहीं आते हैं। आज अध्यापकों को अध्यापक शिक्षा ग्रहण करने में अधिक धन खर्च करना पड़ता है और इसी वजह से वह अपना प्राशिक्षण ग्रहण करने के लिए समाज में कार्य करने के लिए जाते हैं तो वह अपनी शिक्षा में लगे-धन से अधिक कमाने का लोभ मन में रखते हैं। वह कमीनी यह नहीं सोचने की अध्यापक होने के नाते उन्हें समाज की सेवा करनी चाहिए बल्कि वह स्वयं की जेब भरने का उद्देश्य ले कर चलते हैं।

शिक्षक, समाज के सुधार के लिए बिना लोभ कार्य करते हैं, परन्तु आज यह एक पेशा है और अध्यापक इस पेशे को चलाने में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं। समाज सेवा की भावना आज शाब्द ही किसी अध्यापक के मस्तिष्क में आती होगी। अध्यापक वास्तव रूप में समाज में कोई सकारात्मक परिवर्तन नहीं ला पा रहे हैं। कोई नैतिक ज्ञान व मूल्यों का विकास छात्रों को प्रदान नहीं हो रहा है इसलिए आज समाज में अंधाधुंध चल रहा है। अध्यापक यदि स्वयं भ्रष्ट होगा तो वह छात्रों को अच्छे मूल्य कैसे दे पायेगा और यदि छात्रों को प्राप्त होने वाले मूल्य ही भ्रष्ट होंगे तो समाज तो भ्रष्ट भोगे ही। इस बिना में सोचा जा रहा है कि अध्यापकों से समाज में जो भूमिका निभाने की अपेक्षाएँ थी वह उन्हें पूरा नहीं कर रहे हैं। शिक्षा का अधिकार अधिनियम 2009 में ही गई अध्यापक की भूमिका अध्यापकों की भूमिका से संबंधित बिन्दु इस प्रकार हैं -

- ① विद्यालय में उपस्थिति के संबंध में नियमितता एवं समय का पालन करना।
- ② निर्धारित समयविधि में पाठ्यक्रम को ठीक प्रकार से पूरा करना एवं सही रूप से संचालन करना।
- ③ बालकों की शिक्षा ग्रहण करने की क्षमताओं को सही ढंग से समझना और उसी के अनुसार उनके लिए अनिश्चित पाठ के पठन की व्यवस्था करना, माता-पिता के समय-समय पर बैठक करना, बालक के संबंध में, सही उचित एवं आवश्यक जानकारी रखना।
- ④ अध्यापकों पर व्यक्तिगत रूप से प्रोब्लेट रजिस्ट्रेशन देने पर धारा 29 में पारदर्शी है।
- ⑤ सभी बालकों के प्रारंभिक शिक्षा संबंधी रिकॉर्ड को अनिवार्य रूप से रखने के संबंध में धारा 30 (2) में कहा गया है।

Q(8.) परिवार से आप क्या समझते हैं ? परिवार के विभिन्न कार्य क्या हैं? बच्चों के सामाजिकरण का माता-पिता पर क्या प्रभाव पड़ता है? वर्णन करें।

Ans! - परिवार - परिवार अंग्रेजी भाषा के Family का रूपान्तर है। Family शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के शब्द (Famulus) से हुई है। जो एक ऐसे समूह के लिए प्रयुक्त हुआ है जिसमें माता-पिता, बच्चे, नौकर और दास हो। साधारण अर्थ में कहिए जोड़े की परिवार की संज्ञा दी जाती है। परिवार सामान्यतया पति, पत्नी तथा बच्चों के समूह को कहते हैं, किन्तु दुनिया के अधिकांश भागों में वह साथ रहने वाले एक संबंधियों का समूह है जिसमें विवाह और दत्तक प्रथा द्वारा स्वीकृत व्यक्ति भी सम्मिलित हैं।  
परिवार का महत्व :- सभी समाजों में बच्चों का जन्म और पालन-पोषण परिवार में होता है। बच्चों का संस्कार करने और समाज के आचार व्यवहार में उन्हें दीक्षित करने का काम मुख्य रूप से परिवार में होता है। इसके द्वारा समाज की सांस्कृतिक विरासत एक से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित होती है। व्यक्ति की सामाजिक भर्थादा बहुत कुछ परिवार से ही निर्धारित होती है।

परिवार का कार्य :- परिवार समाज का केन्द्र बिन्दु होता है। परिवार के निम्नलिखित कार्य बतार जा सकते हैं।

① सदस्यों का प्रतिस्थापन और उनकी शारीरिक देखभाल - अस्तित्व बनाये रखने के लिए प्रत्येक समाज को मरने वाले सदस्यों को प्रतिस्थापना करना होता है। और जीवित सदस्यों की देखभाल करता है। बच्चों के पैदा होने के बाद उनका पालन-पोषण और संरक्षण परिवार में ही होता है।

② यौन व्यवहार नियंत्रण - परिवार यौन व्यवहार को नियंत्रित करता है। प्रायः प्रत्येक सदस्य का यौन व्यवहार कुछ हद तक परिवार से मिली आचरण की शिक्षा से प्रभावित होता है। परिवार स्पष्ट करता है कि किस दिशा में और किसके साथ यौन आवश्यकताओं की संतुष्टि की जा सकती है।

③ बच्चों की सामाजिक शिक्षा - परिवार संस्कृति के आदान-प्रदान के लिए साधन का कार्य करता है तथा परिवार ही सामाजिकरण का एक प्रमुख माध्यम है। जो अपने बच्चों की सामाजिक प्राणी के रूप में तैयार करता है।

④ आर्थिक कार्य कलाप - आधुनिक परिवार मुख्य रूप से धनीपार्जन करता है तथा परिवार का प्रधान कार्य उन वस्तुओं व सेवाओं का उत्पादन करना है जिन्हें वे आर्थिक माध्यम से रखीदते हैं। परिवार के सदस्यों के लिए आर्थिक सहायता की व्यवस्था करना परिवार का मुख्य कार्य है।

⑤ अन्तः संस्थात्मक कड़ी स्थापित करना :- सामाजिक जीवन में प्रत्येक बच्चा एक

भावी भागीदार है। अर्थात् परिवार व्यक्तियों को उनकी समाजिक भूमिका अदा करने और समाज में प्रतिष्ठा प्राप्त करने के लिए तैयार करता है। तथा सैद्धांतिक कार्यकलापों के लिए अवसर भी प्रदान करता है।

आधुनिक औद्योगिक समाज में परिवार के द्वारा किए जाने वाले बहुत से कार्य समाप्त हो चुके हैं। व्यवसाय, विद्यालय, क्लबाग एवं मोरंजन केंद्रों, जिम्मेदार केंद्र और लै स्कूल जैसी संस्थाएँ उन कार्य को करने से विमुक्त हो गई हैं। जो पहले परिवार द्वारा ही किये जाते थे जिससे व्यक्ति की परिवार व जातेदारी पर निर्भरता कम हो गई है।

बच्चों पर माता - पिता का प्रभाव: (Effect of Parents on Children)  
बालक कितना भी बड़ा क्यों न हो जाये, उसका उचित विकास माँ के आँचल और पिता के स्नेह तले ही संभव ही पाता है। इसमें माता - पिता के आचार-~~व्यवहार~~ विचार व व्यवहार का बड़ा गहरा असर पड़ता है। इसे हम निम्न-लिखित रूप से स्पष्ट कर सकते हैं :-

① पारिवारिक परिस्थितियों - के अनुसार बालक की धारा तो बहुत सा (याद मिलता है) धारा फिर अधिक अवहेलना की जाती है। दोनों ही स्थितियों बालक की किम्वद्विती है। इसलिए माँ-बाप का बालक के प्रति संतुलित व्यवहार होनी चाहिए।

② आचार - विचार - बालक अपने माता - पिता को आदर्श मानकर उनका अनुकरण करने लगता है। जो माता - पिता आचरणहीन होते हैं उनके बालकों के आचरण पर समाज का सँदेह बना रहता है।

③ संस्कृति का असर - बालक परिवार की परम्पराओं तथा रस - रस को देखकर उसके समान आचरण करने की कोशिश करता है। तथा परिवार की संस्कृति के अनुरूप स्वयं को सुसंस्कृत करता है।

④ नैतिक गुण → माता - पिता के व्यवहार के अनुरूप बालक गुण तथा अकृष्ण गुणकला है। अतः आवश्यक है कि उचित व्यक्तित्व के विकास के लिए माता - पिता उचित नैतिक गुण उत्पन्न करें।

⑤ निर्गुण लेने की शक्ति का विकास तथा जिज्ञासा शांत करना - बालक को स्वयं कार्य करने का अवसर देना चाहिए। स्वयं कार्य करने से उसमें साहस बढ़ेगा तथा वह स्वावलंबी बनेगा। माता - पिता को बालकों की उपेक्षा नहीं करनी चाहिए। बालक यदि प्रश्नकरतीं संतोषजनक उत्तर देना चाहिए। इसके उसकी जिज्ञासा शांत होगी तथा नवीन ज्ञान की प्राप्ति होगी। डाँट व प्रकार लगाने में उसे अक्षरणा की भाँसा उत्पन्न होती है।

अतः हम कह सकते हैं कि माता - पिता के व्यवहार के अनुरूप बालक का आ-  
चरण एवं व्यक्तित्व का निर्धारण होता है।



Q(9.) समाजीकरण क्या है? समाजीकरण के विभिन्न अभिकरणों की चर्चा करें।

कि:- समाजीकरण से अभिप्राय समाज सम्मत् व समाज द्वारा मान्य व्यवहारों का सीखने की प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया के कारण ही व्यक्ति सामाजिक व्यक्ति के रूप में परिवर्तित होता है। मानव व्यवहार में सामाजिक मूल्यों, प्रतिभाओं, व्यवहारों व आदर्शों को अपनाने के लिए विभिन्न प्रकार के साधनों का उपयोग करता है। ये साधन औपचारिक भी हो सकते हैं और अनौपचारिक भी। समाजीकरण की प्रक्रिया के दौरान व्यक्ति जिन मुख्य साधनों तथा अभिकरणों का उपयोग में लाता है। उनमें से प्रमुख निम्नलिखित हैं।

① परिवार - समाजीकरण करने वाली संस्थाओं में परिवार सर्वाधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि बालक परिवार में ही जन्म लेता है और सर्वप्रथम परिवार के सदस्यों के सम्पर्क में आता है। परिवार में ही वह समाज के रीति रिवाज लोकाचार प्रथाओं एवं संस्कृति का ज्ञान होता है। सदस्यों के पारस्परिक प्रेम, सहयोग, त्याग, अधिकार, बलियान, संकल्प, कर्तव्यनिष्ठा आदि से बच्चे में भी सदगुण जन्म लेते हैं जिनमें बच्चा उनके आचरण को सीखते हैं।

② क्रीडा समूह (Play Group) - समाजीकरण की दृष्टि से मित्रों का समूह एक प्राथमिक समूह है। परिवार के बाद वह अपने साथ खेलने वालों के सम्पर्क में आता है। ये लोग उसे परिस्थिति एवं वर्ग के मूल्यों से अवगत कराते हैं। खेल समूह में बच्चा खेल के नियमों का पालन करना सीखता है। वह दूसरों के नियंत्रण में रहना व अनुशासन का पालन करना सीखता है। उसमें नेतृत्व के गुण विकसित होते हैं। वह खेल में हार व जीत होने पर परिस्थितियों से अनुकूलन करना सीखता है।

③ पड़ोस (Neighbourhood) - पड़ोस का बच्चे के समाजीकरण में महत्वपूर्ण योगदान होता है। बच्चों का नहीं बरन् बड़ों के समाजीकरण में भी योगदान होता है। बच्चे अनजाने में ही पड़ोस से कई बातें सीख जाते हैं। पड़ोस के लोग बच्चों को स्नेह एवं आर से कई नई बातों का ज्ञान कराते हैं। उनकी प्रशंसा और प्रिय के द्वारा उसे समाज सम्मत व्यवहार करने को प्रेरित करते हैं।

④ नातेदारी समूह (Kin Group) - नातेदारी समूह में रक्त एवं विवाह से संबंधित सभी रिश्तेदार आ जाते हैं। बहन-भाई, पति-पत्नी, साले-साली, चाचा-कका, देवर-भाभी और अन्य सभी संबंधियों के सम्पर्क से व्यक्ति कुछ न कुछ सीखता है। विभिन्न रिश्तेदार भी बच्चे पर अपना प्रभाव डालते हैं।

⑤ विवाह (Marriage) - विवाह का भी व्यक्ति के जीवन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। विवाह के बाद लड़के व लड़की को पति व पत्नी की भूमिका निभानी होती है तथा नये शैलियों का निर्वाह करना होता है। उन्हें एक-दूसरे के लिए त्याग करना

होता है, निष्ठा रखनी होती है।

⑥ शिक्षण संस्थाएँ - शिक्षण संस्थाओं के अन्तर्गत हम स्कूल, कॉलेज एवं विश्वविद्यालय आदि को गिनते हैं। शिक्षण संस्थाओं में बच्चा प्रमुख रूप से चतुर्जनों पाठ्य पुस्तकों एवं साहित्य तथा कक्षा के साधनों से अनेक बातें सीखता है, कोई न कोई अध्यापक उसके लिए आदर्श विचार, आचरण तथा सहन-सहन के ढंग भी अपनता है। उसकी मानसिक क्षमता का विकास होता है। वह देश-विदेश के समाजों एवं संस्कृति के बारे में ज्ञान प्राप्त करता है। इस प्रकार शिक्षण संस्थाएँ व्यक्ति के व्यक्तित्व विकास करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं।

⑦ आर्थिक संस्थाएँ - आर्थिक संस्थाएँ भी व्यक्ति की जीवन थापन के लिए समर्थ बनती हैं इनके द्वारा हम यह सीखते हैं कि बाजार चैक व बूझन में किस प्रकार का व्यवहार करें। ये संस्थाएँ ही व्यक्ति को व्यवसायिक संघों से परिचित कराती हैं। व्यक्ति में सहयोग, प्रतिस्पर्धा एवं समाजोपन के भाव पैदा करती हैं।

⑧ धार्मिक एवं सांस्कृतिक संस्थाएँ - व्यक्ति के जीवन पर धर्म का गहरा प्रभाव होता है ईश्वरीय जय एवं श्रद्धा के काल में मैतिकता तथा अन्य ज्यों की ग्रहण करता है। आधुनिक समाज में अनेक सांस्कृतिक संस्थाएँ जैसे - संगीत अकादमी, नारक मंडली, कवि सम्मेलन एवं क्लब आदि व्यक्ति के विकास में योगदान देती हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं उसका सामाजिक रायरा बढ़ता जाता है और अनेक संस्थाओं के माध्यम से उसका समाजीकरण होता रहता है।

समाजीकरण की प्रक्रिया में यौन संबंधी भेदभाव

जब सामाजिक भूमिकाएँ लिंग के आधार पर निर्धारित की जाती हैं, तो इससे भेदभाव होता है। इसमें औरतों पर कई प्रकार के प्रतिबंध लगाये जाते हैं जिनके कारण अक्सर महिलाएँ स्वयं महसूस करती हैं। उन पर लगाये गये प्रतिबंध सामाजिक मनोकामनाओं, भूल्यों, प्रतिभाओं, सीते रीवाजों और अपेक्षाओं से उत्पन्न होते हैं। जैसे - पुरुष को स्त्री की अपेक्षा श्रेष्ठ समझा जाना, शिक्षा के अधिकार में भेदभाव, मजदूरी में भेदभाव। स्त्री पुरुष संबंधी भेदभाव किसी विशेष समूह मात्र की महिलाओं के लिए लागू नहीं होती। बल्कि प्रत्येक समाज में स्त्री व पुरुष के मध्य किसी न किसी प्रकार का भेदभाव अवश्य किया जाता है।

⑩ नैतिक विकास एवं मूल्यों के विकास में विद्यालय एवं शिक्षा का क्या योगदान है? चर्चा करें।

Ans:- शिक्षा के क्षेत्र में नैतिक या चारित्रिक विकास की महत्ता को कभी भी कम नहीं आँका जा सकता। शिक्षा तभी सार्थक है जब वह बुद्धिमान एवं उत्तरदायित्वों को सम्भालने वाले नागरिकों का निर्माण कर सके और यह कार्य चरित्र निर्माण के बिना सम्भव नहीं हो सकता। इसलिए चाहे शिक्षा की कोई भी प्रणाली क्यों न हो अथवा कोई स्तर या अवस्था क्यों न हो, नैतिक विकास और चरित्र निर्माण प्रत्येक स्तर और अवस्था में शिक्षा का एक मुख्य और आवश्यक उद्देश्य माना जाता है। आइए देखें कि किस प्रकार शिक्षा बच्चों के चरित्र का ठीक-ठीक विकास करने में सहायक सिद्ध होती है और अध्यापक तथा विद्यालय बच्चों के नैतिक विकास तथा चरित्र निर्माण में किस प्रकार अपना सहयोग प्रदान कर सकते हैं। सामान्यतया इस कार्य के लिए कुछ निम्न सुझाव एवं तकनीक काफी उपयोगी सिद्ध हो सकती हैं। -

① मूल प्रवृत्तियों और संवेगों का उचित प्रशिक्षण - मूल प्रवृत्तियाँ चरित्र की आधारशिलाएँ हैं। इसलिए नैतिक विकास और चरित्र निर्माण की दिशा में मूल प्रवृत्तियों का शोधन और उन्नयन करना है। व्यवहार को प्रभावित करने वाले विभिन्न संवेग मूल प्रवृत्तियों से ही पोषित होते हैं। इस तरह मूल प्रवृत्तियाँ और संवेग दोनों मिलकर मानव चरित्र को अच्छा और बुरा मोड़ प्रदान करने की सामर्थ्य रखते हैं। इसलिए सुन्दर व स्वस्थ चरित्र के लिए बच्चों की मूल प्रवृत्तियों और उनके संवेगों के उचित शोधन और प्रशिक्षण की आवश्यकता है।

② इच्छा या संकल्प शक्ति का प्रशिक्षण - निर्णय शक्ति और उचित समय पर उचित निर्णय लेने की क्षमता - दोनों सशक्त नैतिकता एवं चरित्र के बहुमूल्य तत्व हैं। और इन दोनों तत्वों की इच्छा तथा संकल्प शक्ति द्वारा ही जीवन मिलता है। अतः बालकों की इच्छाओं तथा संकल्प शक्ति को दृढ़ बनाने के लिए हर संभव उपाय किए जाने चाहिए।

③ अच्छी आदतों का विकास - चरित्र की आदतों की पूंजी कहा जा सकता है। अच्छी और बुरी आदतें व्यक्ति को अच्छे और बुरे रास्ते पर ले जाकर उसके चरित्र को सामाजिक रूप से वांछित और अवांछित बनाने का कार्य करती हैं। अतः बालकों में शुद्ध वही अच्छी आदतें डालने का प्रयास करना चाहिए।

④ उचित आदर्शों का विकास - व्यक्ति की अपनी मान्यताएँ, मूल्य और आदर्श उसके नैतिकता तथा चरित्र को प्रतिबिम्बित करते हैं। किसी एक परिस्थिति में वह जैसा व्यवहार करता है उसके पीछे उसके जीवन के लक्ष्यों और आदर्शों की दाय

(5) शुभाव और नैतिक विकास :- नैतिक और चारित्रिक विकास में शुभावों का भी बहुत महत्व है। बच्चे जोले होते हैं। उन पर शुभावों का गहरा प्रभाव पड़ता है। अतः शुभावों को नैतिक विकास के कार्य में अली अति प्रयोग में लाया जा सकता है। लेकिन जहाँ तक संभव हो बच्चों के व्यवहार में अनुकूल परिवर्तन लाने के लिए सकारात्मक शुभाव की ही सहायता लेनी चाहिए।

(6) अनुकरण और नैतिक विकास - बच्चा स्वभाव से ही अनुकरण अवश्य करता है। उसके लिए माता-पिता, अन्य बड़े लोग तथा अध्यापक आदर्श होते हैं। यह जाने अनजाने उसका अनुकरण करता रहता है। इसलिए यह आवश्यक ही जाता है कि अध्यापक, माता-पिता और समाज के अन्य उत्तरदायित्वपूर्ण व्यक्तियों द्वारा अपने व्यवहार और चरित्र को लेकर अच्छे उदाहरण बच्चों के सामने रखे जायें।

(7) पुरस्कार और दंड का समुचित प्रयोग - नैतिक विकास तथा चरित्र निर्माण में पुरस्कार और दंड दोनों का ही महत्वपूर्ण स्थान है। आपस में मनोवैज्ञानिक तथा प्रजासंगीक युग में बच्चों के चरित्र निर्माण के लिए उन्हें दंड देना अच्छा नहीं समझा जाता। यह कहा जाता है कि डॉर-फरवॉ निन्दा, जुर्माना, मारपीट आदि दंडों के द्वारा बच्चों के मन में तरह-तरह की कूटायें छद्म कर लेती हैं और इस तरह से बजाय लाभ के हानि पहुँचाने की संभावना अधिक होती है। परन्तु फिर भी जहाँ तक ही इसके दंड का प्रयोग उसी अवस्था में किया जाना चाहिए जबकि सम्झने, बुझाने और अन्य सकारात्मक उपायों जैसे पुरस्कार, प्रशंसा, प्रोत्साहन आदि का उन पर कोई प्रभाव न दिखे।

(8) नैतिक विकास में विद्यालय, परिवार और समाज का उत्तरदायित्व:- नैतिक विकास तथा चरित्र निर्माण में वातावरण संबंधी शक्तियों महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। घर, विद्यालय और सामाजिक परिवेश में जो कुछ भी चरित्र होता है उसका प्रभाव बच्चों के चरित्र पर अवश्य पड़ता है। सबसे पहले नैतिकता का प्रथम पाठ बच्चे अपने परिवार में माता-पिता तथा परिवार के सदस्यों से सीखता है। घर के अलावा पाठ-पढ़ाई, समुदाय तथा सामाजिक परिवेश की अन्य शक्तियों भी बच्चों के चरित्र को प्रभावित करती हैं। जब वह विद्यालय जाता है तब विद्यालय का वातावरण, प्राध्यापक, सहपाठी, शिक्षकों के व्यवहार से चरित्र की दृष्टि पर अवश्य पड़ती है।

Q (11) विद्यालय - संस्कृति क्या है? विद्यालय संस्कृति का बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ता है? चर्चा करें।

Ans: - विद्यालयी संस्कृति :- विद्यालयी संस्कृति वह मूल-धारणाओं एवं विश्वासों होते हैं जिन्हें विद्यालय में अध्यापकों द्वारा अपनाया जाता है। इन्हें विद्यालय में सभी जानते हैं। इन सभी धारणाओं एवं विश्वासों का संबंध मानव की प्रकृति एवं क्रियाओं से होता है। विद्यालय संस्कृति के अन्तर्गत वे सभी लक्षण पाये जाते हैं जो कि एक संगठन में होने चाहिए। इसे एक तरीका भी कहा जा सकता है जिसके द्वारा विद्यालय में सभी लोग कार्य करते हैं। विद्यालय संस्कृति के लिए विद्यालय वातावरण का प्रयोग किया जाता है। यदि कोई विद्यालय सफलता प्राप्त करना चाहता है तो इसके लिए उस विद्यालय की संस्कृति से पूरी सौच स्वस्थ होनी चाहिए। शिक्षकों को इसी सौच के साथ विद्यालय में कार्य करना चाहिए। मुख्य रूप से संस्कृति का संबंध नैतिक संरचनाओं, पिछली घटनाओं को मानना आदि से संबंधित होता है। विद्यालय संस्कृति का संबंध मूल धारणाओं और व्यक्तियों तथा संगठन के केन्द्रीय मूल्यों से होता है।

अक्सर यह देखा जाता है कि अधिकतर बच्चों को विद्यालय में समायोजन की समस्या होती है। जब बच्चा प्राथमिक स्तर की शिक्षा प्राप्त करने के लिए विद्यालय में जाता है तो उसे वहाँ के वातावरण, सहपाठियों तथा अध्यापकों के साथ समायोजन करना पड़ता है परन्तु यदि बच्चे ने पहले से ही पूर्व प्रारंभिक कक्षा में शिक्षा प्राप्त की हुई होती है तो उसे नये वातावरण में समायोजन करते समय अधिक कठिनाई का सामना नहीं करना पड़ता है। यदि विद्यालय का वातावरण स्वस्थ होता है और वहाँ के शिक्षक सहयोगी भाव से शिक्षण करते हैं तो उस विद्यालय में एक अच्छी संस्कृति बनती है।

विद्यालय संस्कृति के प्रकार :- (Types of School Culture)

विद्यालय में जिन प्रकार का वातावरण देखा जा सकता है और जो वातावरण विद्यालय में होता है वही विद्यालय की संस्कृति कहलाती है। इनके बारे में बिन्दु इस प्रकार हैं :-

- ① लोकतंत्रवादी वातावरण - इस प्रकार के वातावरण में अध्यापक और विद्यार्थी यह निश्चित कर लेते हैं कि उन्हें कक्षा में क्या कुछ करना है। इन कक्षाओं में पढ़ने वाले बच्चों की कुछ विशेषताएँ देखने को मिलती हैं - कक्षा में अन्यथा में आपस में मैत्रीपूर्ण संबंध का होना, आपस में सहयोग की भावना आदि।
- ② निरंकुशतादी वातावरण - इस प्रकार के वातावरण के अन्तर्गत कक्षा में अध्यापक ही सब कुछ होता है। कक्षा की सभी क्रियाओं के बारे में अध्यापक ही सभी निर्णय

लैता है। ऐसे छात्र निष्क्रिय, विद्रोही प्रवृत्ति के होते हैं। ऐसी परिस्थिति में विद्यार्थी अध्यापक की अनुपस्थिति में कुछ भी कार्य करने में असमर्थ होता है। इसमें सहयोग की अपेक्षा आपसी विरोध अधिक होता है।

③ स्वतंत्रतावादी वातावरण - इसमें अध्यापक विद्यार्थियों को पूरी छूट दे देता है। विद्यार्थी के सुझावों को अधिक महत्व दिया जाता है। लेकिन व्यवहारिक रूप से ऐसी कक्षाएं डेरवने को बहुत कम मिलती हैं।

पाठ्य सहगामी क्रियाओं का विद्यालय संस्कृति में महत्व छात्र के सम्पूर्ण विकास के लिए पाठ्य सहगामी क्रियाओं को पाठ्यक्रम में शामिल किया गया है। इससे छात्रों की मानसिक, शारीरिक, लौकिक, अध्यात्मिक शक्तियों का विकास किया जा सकता है। पाठ्यक्रम में शिक्षा के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए ये क्रियाएँ सहायक होती हैं। यह क्रियाएँ छात्रों में बुद्धि, धर्म्यता व सर्वांगीण विकास के तत्व शामिल करती हैं इससे विद्यालय की संस्कृति में सुधार आता है और विद्यालय की संस्कृति स्वस्थ रूप में विकसित होती है।

प्रातः कालीन सभा की विद्यालय संस्कृति में भूमिका - किसी भी विद्यालय की समय-सारणी में दिन की शुरुआत प्रातः कालीन सभा से की जाती है। फ्लोरा जे. कुक ने कहा है - "प्रातः कालीन अन्वय सामान्य प्रीटिंग स्थल है। जहाँ प्रत्येक व्यक्ति कुछ देने के लिए आता है - अपने निरीक्षण तथा अध्ययन का फल, संगीत, साहित्य और कला जिससे उसे आनंद प्राप्त होता है, यह एक ऐसा स्थल है, जहाँ सबके सुख एवं कल्याण के लिए सभी सहयोग प्रदान करते हैं।" वास्तव में प्राथना का अर्थ है जब व्यक्ति की अपनी इच्छाओं की पूर्ति हो जाती है फिर वह परमात्मा का ध्यान करके अपने जीवन के लिए प्रार्थना करता है और अपने कर्मों के मार्ग में चलने के लिए शक्ति की प्रार्थना करता है। प्रातः कालीन सभा के उद्देश्य - स्कूल सभा सभी विद्यार्थियों तथा अध्यापकों को एक स्थान पर एकत्रित होने का अवसर प्रदान करती है। इससे उनमें स्कूल के प्रति भावनात्मकता का विकास होता है। वे स्कूल की अच्छी प्रकार से समझने लगते हैं और संगठित होकर उसके लिए काम करने लगते हैं।

प्रातः कालीन सभा स्कूल के समूचे वातावरण पर सकारात्मक प्रभाव डालती है। यह स्कूल के कार्य - स्तर को विकसित एवं प्रदर्शित करती है।

⑩ (12.) विद्यालय, परिवार एवं समुदाय में क्या संबंध है? विचार से-र्चा करें।

क्र.स. :- परिवार - विद्यालय सहभागिता :- विद्यालय व परिवार दोनों ही शिक्षा की महत्वपूर्ण संस्थाएँ हैं। दोनों के द्वारा बच्चों में ज्ञान व संस्कारों का निर्माण किया जाता है। इन दोनों के अपने-अपने दायित्व होते हैं यदि इनके द्वारा कोई भी उत्तम चयन होता है तो शिक्षा की प्रभावशीलता में कमी आ जाती है और बच्चों के व्यक्तित्व पर भी इसका प्रभाव पड़ता है। इन दोनों का सहयोगी रूप में कार्य करना समय की मांग है।

शिक्षा के लिए यदि विद्यालय को प्रभावशाली साधन बनाना है तो विद्यालय को परिवार का सबसे अधिक सहयोग चाहिए। माता-पिता की छात्र की भर्त्सना - बुराई, चुन-अवचुन, आदतों की अस्थापक के साथ-चर्चा करनी चाहिए। क्योंकि इन सभी बातों का ज्ञान प्राप्त कर अस्थापक छात्र का सही प्रकार से पढ़ा प्रदर्शन कर सकते हैं।

विद्यालय के सहयोग में परिवार की भूमिका :-

① अभिभावकों द्वारा बच्चों की शिक्षा पर-ध्यान देना - प्रायः माता-पिता बच्चों के विद्यालय में प्रवेश के बाद निश्चित रूप से बैठ जाते हैं तथा उसकी शिक्षा की ओर ध्यान नहीं देते हैं। परन्तु यह नहीं होना चाहिए। अभिभावकों को ध्यान देना चाहिए कि उनके बच्चे विद्यालय में जाकर अच्छे से सीखें। उनकी प्रगति संतोषजनक हो। अगर ऐसा नहीं होता है तो इस विषय में अस्थापकों से बात करें।

② शैक्षिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना - बच्चों के शैक्षिक कार्य को अच्छी तरह से चलाने के लिए अभिभावकों को बच्चों की शैक्षिक आवश्यकताओं पर विशेष ध्यान देना चाहिए तथा उन्हें पुरस्कृत, कलम, कॉपी व अन्य वस्तुएँ समय-समय पर उपलब्ध करवाते रहना चाहिए।

③ अस्थापकों से सम्पर्क करना - अभिभावकों बच्चों के अस्थापकों से नियमित सम्पर्क बनाने चाहिए और उनसे बच्चों की कक्षा में स्थिति व व्यवहार के विषय में पूछते रहना चाहिए और इस विषय में विचार-विमर्श करने चाहिए जिससे संबंधित समस्या का पता चल सके और सही समाधान निकाला जा सके।

④ स्कूल डायरी देखना :- अभिभावकों को बच्चों की स्कूल डायरी प्रतिदिन देखनी चाहिए ताकि जिससे यदि अस्थापक कुछ लिखकर भेजते हैं तो उसके संबंध में आवश्यक प्रतिक्रिया की जा सके।

⑤ स्कूल रिपोर्ट को महत्व देना - यदि विद्यालय में बच्चों के संबंध में कोई रिपोर्ट प्रस्तुत होती है या घर ली जाती है तो अभिभावकों को इसे गंभीरता से लेना

चाहिए तथा इस विषय में तुरन्त आवश्यक कदम उठाने चाहिए।

(E) बच्चों की शैक्षिक समस्याओं पर ध्यान देना :- कई बार बीमारी के कारण विद्यालय में अनुपस्थित रहने अथवा अन्य कारणों से बच्चा किसी एक या अधिक विषयों में पिछड़ जाता है। अभिभावकों को इस ओर तुरन्त ध्यान देना चाहिए बच्चे के लिए किसी प्राइवेट प्राशिक्षण की व्यवस्था करनी चाहिए अथवा अस्थापक से मिलकर उनसे बच्चे की मदद के लिए अनुरोध करना चाहिए।

### विद्यालय तथा समुदाय

बालक की शिक्षा में परिवार के पश्चात् समुदाय भी एक विशिष्ट योगदान देता है। समुदाय शिक्षा प्रदान करने का अनौपचारिक व सक्रिय साधन है। समुदाय ने नई पीढ़ी को शिक्षित करने के लिए कई साधनों का विकास किया है। लेकिन फिर भी इसी स्वयंशिक्षा देने का उत्तरदायित्व जिम्मा पड़ता है। इस प्रकार समुदाय प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष दोनों ढंग से शिक्षा प्रदान करता है।

विद्यालय एवं समुदाय के मध्य घनिष्ठ संबंध है। ये दोनों अपनी-अपनी उन्नति एवं स्थायित्व के लिए एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। विद्यालय एक सामाजिक संस्था है। समाज स्वयं को जीवित रखने के लिए विभिन्न प्रकार की शिक्षा संस्थाओं की स्थापना करता है, जिनके द्वारा समाज के विचारों, मान्यताओं, आदर्शों, कलाओं, मानदंडों और परम्पराओं को आगे बढ़ाया जाता है। विद्यालय का समुदाय के जीवन एवं उसकी प्रगति पर बहुत प्रभाव पड़ता है। विद्यालय अपनी विचारों एवं कार्यों द्वारा समुदाय का पथ प्रदर्शन करके उसे प्रगति की ओर ले जाता है इस प्रकार दोनों ही एक दूसरे पर निर्भर हैं।

जॉन डीव्ही ने विद्यालय तथा समुदाय के संबंध में स्पष्ट कि- "अच्छे व बुद्धिमान माता-पिता जो अपने बालकों के लिए चाहते हैं, वही समुदाय भी सभी बालकों के लिए चाहता है।" स्पष्ट है कि समुदाय भी विद्यालय पर निर्भर रहता है।

इस प्रकार समावेशी शिक्षा ही वा सामान्य शिक्षा। शिक्षा प्रदान करने में समुदाय की महत्वपूर्ण भूमिका होती है, ये दोनों ही एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं तथा शिक्षा के उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहायक होते हैं। दुमायें कबीर ने लिखा है - "विद्यालय समुदाय के जीवन का प्रतिबिम्ब है और उसे ऐसा होना भी चाहिए। अतः भारत में सार्वजनिक विद्यालयों को भारतीय जीवन के ढाँचे के अधिक निकर लाना जाना चाहिए।"